

महात्मा गाँधी का सामाजिक दर्शन

¹डॉ. रामजीलाल सेठी

सारांश

सामाजिकता मानव की प्रवृत्ति का प्रमुख लक्षण है। अन्य शब्दों में समाज में रहना उसका स्वभाव है। अतः अरस्तु ने मानव को सामाजिक प्राणी कहा। उसकी प्रगति का विहंगावलोकन करना भी इसे प्रमाणित करने के लिए यथेष्ट है कि मानव ने जो कुछ भी प्रगति की, वह सब असंभव होता, यदि उसने अपने आपको समाज में विच्छन्न कर लिया होता। केवल इतना ही नहीं, मानव के रूप में जीना भी उसके लिए मुश्किल से संभव होता। वास्तव में व्यक्ति एवं समाज इतने अंतरावलंबित एवं परस्पर पूरक बन गये हैं कि एक के बिना दूसरे की सत्ता, स्थिरता एवं प्रगति की कल्पना करना भी कठिन प्रतीत होता है। समाज के बिना मानव केवल अंधा पशु है और मानव के बिना समाज विसंगत एवं अर्थहीन है। बहुत से व्यक्ति मिलकर एक समाज की रचना करते हैं जो बदले में उसके अस्तित्व को सुखमय एवं उसके जीवनादर्श की उपलब्धि को संभव बनाता है।

मूल शब्द : सामाजिकता, सामाजिक संगठन, समाज का पुनर्निर्माण, वर्ग समन्वय

¹व्याख्याता, राजनीति विज्ञान

प्रस्तावना

मानव इतिहास के प्रारम्भ में जब कोई सामाजिक संगठन नहीं था, मनुष्य स्वच्छन्दतापूर्वक इधर-उधर विचरता था। उस समय अपने को जीवित रखना ही उसकी मुख्य चिन्ता थी। वस्तुतः यह समस्त प्राणियों की प्रमुख चिन्ता रही है। इतिहास के इस आदिम युग में मनुष्य ने प्रकृति का स्वच्छन्दतापूर्वक उपयोग किया। जिस पर भी उसकी दृष्टि पड़ती थी उसका वह स्वामी बन जाता था, उसके अधिकार को चुनौती देने वाली कोई शक्ति नहीं थी। संभवतः उसकी संख्या वृद्धि के कारण एक ऐसा समय आया जब एक व्यक्ति या समूह का स्वार्थ दूसरे से टकराने लगा। इसी टकराव से हिंसा एवं युद्ध का जन्म हुआ।¹ परिणामस्वरूप अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए सामग्री संग्रह करने के प्रयास में वे प्रायः एक-दूसरे से संघर्ष कर नष्ट होने लगे।²

प्रारम्भ में जनसंख्या कम होने के कारण विनाश की संभावना भी कम थी। किन्तु जनसंख्या की वृद्धि के फलस्वरूप संघर्षों की असाधारण रूप से पुनरावृत्तियाँ होने लगीं और एक समय ऐसा भी आया कि मनुष्य के लिए अपना अस्तित्व बनाये रखना असंभव प्रायः हो गया। अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए उनके प्रयास से ही उनका अस्तित्व खतरे में पड़ गया। अन्ततोगत्वा परिस्थितियों के दबाव के कारण बर्बर और हिंसक मनुष्यों को विचारशील एवं उदार मनुष्यों के समक्ष झुकना पड़ा। उसने सोचा कि हिंसा को नियंत्रित और युद्ध को परिमित करने का मार्ग निकाले बिना उसका अस्तित्व ही लुप्त हो जायेगा

और तब से मनुष्य असंख्य सामाजिक प्रयोगों के द्वारा हिंसा से मुक्ति पाने की साधना में लगा हुआ है। वह कभी एक विशिष्ट प्रकार की समाज व्यवस्था कायम करता है और फिर उसी के विरुद्ध संघर्ष कर उसे नष्ट करता है तथा फिर उसके स्थान पर किसी दूसरी व्यवस्था को कायम करता है।³

सामाजिक पुनर्निर्माण

गाँधी जी समाज का पुनर्निर्माण करना चाहते थे। जिसका मूल उद्देश्य समाज में रहने वाले समस्त वर्गों का सर्वांगीण विकास करना था। गाँधी ने अपने सामाजिक पुनर्निर्माण के प्रयास में प्रथम स्थान व्यक्ति को दिया। समाज का प्रश्न वास्तव में 'व्यक्ति की गरिमा' एवं 'नागरिक महत्ता' का प्रश्न है। इसका प्रमुख कारण गाँधी ने मनुष्य की आत्मा की सर्वोपरिता को माना एवं उनके दृष्टिकोण में समाज की उन्नति साधारण व्यक्ति की आध्यात्मिक शक्ति के विकास पर निर्भर करती है। व्यक्ति नितान्त भौतिक तत्वों का मशीनी संयुक्तीकरण नहीं, बल्कि एक दैवीय चिंगारी है।⁴ इसलिए इसमें आध्यात्मिक आत्म-चतेना और नैतिक अन्तरात्मा हैं। गाँधी के विचार में ईश्वर एवं मनुष्य में कोई विरोध नहीं है। साथ ही सभी जीवधारियों की मूलभूत एकता में विश्वास होने के कारण गाँधी ने माना कि व्यक्ति सृष्टि का सेवक है, स्वामी नहीं है। मृत्यु के बाद भी आत्मा का अस्तित्व रहता है। आत्मा भौतिक जीवन से संयुक्त नहीं। इसलिए जो घटना एक शरीरधारी पर घटती है, उसका प्रभाव समग्र जड़-पदार्थों पर और सबकी आत्मा पर पड़ता है।⁵

यद्यपि गाँधी सामाजिक पुनर्निर्माण में व्यक्ति को केन्द्र बिन्दु मानते हैं, लेकिन समाज के संस्थागत सुधार पर बल देते हैं।⁶ गाँधी जी बहुआयामी थे। आध्यात्मिक क्षेत्र में वे मनुष्य में सद्गुणों का विकास करना चाहते थे। मनुष्य स्वभाव सम्बन्धी गाँधी जी के विचार आध्यात्मिक विश्वासों और नैतिक सिद्धान्तों के साथ अविभाज्य रूप से सम्बन्धित हैं। वे केवल मनुष्य के शारीरिक, ब्राह्म आचार व्यवहार का ही अध्ययन नहीं करते, मनुष्य के मूल स्वभाव एवं उसके सच्चे आध्यात्मिक स्वरूप को जानते हैं। गाँधी ने माना, 'हम में से प्रत्येक में अच्छाई और बुराई का सम्मिश्रण है। इस प्रकार सामाजिक पुनर्निर्माण में गाँधी जी की आस्था समुदायों की अपेक्षा व्यक्तियों में अधिक रही। यद्यपि गाँधी जी मनुष्य स्वभाव की वैयक्तिक एवं सामूहिक दुर्बलताओं से परिचित थे, किन्तु वे मनुष्य को स्वभाव से भिन्न नहीं मानते, क्योंकि मनुष्य सर्वप्रथम आत्मा है। प्रत्येक मनुष्य में उच्चतम विकास की क्षमता है। व्यक्ति का जीवन एक प्रेरणा है। इसका लक्ष्य पूर्णता के लिए प्रयत्नशील रहना है, जो आत्मोपलब्धि है। गाँधी जी ने माना कि व्यक्ति की मनोवृत्ति एवं दृष्टिकोण को नैतिक व मनोवैज्ञानिक आधारों पर बदला जा सकता है, क्योंकि व्यक्ति सम्पूर्णता की प्राप्ति एवं निरन्तर क्षमतावृद्धि से प्रेरित होता है। इसके लिए गाँधी जी तपस्या और त्याग पर बल देते हैं।⁷

गाँधी जी के अनुसार समस्त कष्टों का मूल कारण मनुष्य में अन्तर्निहित अपूर्णताएं हैं। अतः जब तक इन अपूर्णताओं को समाप्त नहीं किया जायेगा तब तक सामाजिक पुनर्निर्माण असम्भव है। इसी पूर्व प्राथमिकता के आधार पर गाँधी जी 'वर्ग संघर्ष के स्थान पर 'वर्ग समन्वय' को प्राथमिकता देते हैं। इसके लिए गाँधी जी वर्णाश्रम धर्म का आश्रय लेते हैं क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति कुछ स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ लेकर जन्म लेता है। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की कछु निश्चित सीमाएं होती हैं।⁸

सामाजिक पुनर्निर्माण के प्रमुख लक्ष्य

गाँधी जी ने तत्कालीन सामाजिक पुनर्निर्माण प्रक्रिया में अस्पृश्यता निवारण, साम्प्रदायिकता का विरोध अथवा साम्प्रदायिक सद्भावना की स्थापना, स्त्री-पुरुष की समानता पर बल, मादक साधनों का विरोध इत्यादि सामाजिक समस्याओं को महत्वपूर्ण लक्ष्य निर्धारित किया।

अस्पृश्यता निवारण

गाँधी जी ने तत्कालीन सामाजिक पुनर्निर्माण प्रक्रिया में अस्पृश्यता निवारण को प्रथम स्थान दिया। उनके मतानुसार 'मेरी राय में हिन्दू धर्म में दिखाई पड़ने वाली अस्पृश्यता का वर्तमान रूप ईश्वर और मनुष्य के विरुद्ध किया गया भयंकर अपराध है। उसने लगभग चार करोड़ लोगों का विकास रोक रखा है, इसलिए इस बुराई को जितनी जल्दी निर्मूल कर दिया जाये, उतना ही मानव जाति के लिए कल्याणकारी सिद्ध होगा। अस्पृश्यता के रूपान्तरण में समाज में विकृति एवं विशेषाधिकारों का बढ़ावा दिया है। अतः गाँधी जी ने माना कि ऐसी विकृति की समाप्ति अनिवार्य है। अस्पृश्यता निवारण को दायित्व, प्रायश्चित एवं सामाजिक प्राथमिकता का प्रतीक मान कर गाँधी जी ने सामाजिक पुनर्निर्माण को आवश्यक माना।⁹

साम्प्रदायिकता का विरोध

समाज के नवनिर्माण की एक महत्वपूर्ण बाधा साम्प्रदायिकता है जिसका गाँधी जी ने विरोध किया और साम्प्रदायिक सद्भावना की स्थापना पर बल दिया। उनके अनुसार हिन्दू-मुसलमान समस्या पारस्परिक अविश्वास, प्रतिशोध, असमानता, कटुता और तनाव की स्थिति में उत्पन्न हुई। इसके समाधान का एक ही उपाय है-सद्भावना, सहिष्णुता, न्याय एवं पारस्परिक सम्पर्क के वातावरण की स्थापना। गाँधी जी के अनुसार साम्प्रदायिकता भारतीय इतिहास पर कालिमा रही है। इसलिए गाँधी ने सभी धर्मों एवं धर्माधिकारियों से सचेत रहने का आह्वान किया और माना कि बलपूर्वक किसी भी धर्म का प्रचार करना, धर्म परिवर्तन कराना, अमानवीय और अमान्य कृत्य हैं। गाँधी जी के अनुसार हिन्दू-मुसलमानों के मध्य संघर्ष वास्तव में ब्रिटिश शासकों के आगमन के साथ उग्र हुआ। राजनीति को संकीर्ण एवं स्वेच्छाचारी दृष्टि से देखने के फलस्वरूप एक अस्वाभाविक स्थिति प्रबल बन गई। यही कारण था कि गाँधी जी हिन्दू-मुस्लिम एकता को स्वराज्य की पूर्व शर्त मानते हैं।¹⁰

स्त्री-पुरुष की समानता पर बल

सामाजिक न्याय हेतु गाँधी जी स्त्री-पुरुष की समानता पर बल देते थे। गाँधी जी ने नारी के मूल में छिपी मातृ-शक्ति, त्याग, करुणा, दान, प्रेम एवं अहिंसा को प्राथमिक माना। गाँधी जी ने माना कि स्त्री पुरुष की साथी हैं, जिसकी बौद्धिक क्षमताएं पुरुष की बौद्धिक क्षमताओं से किसी तरह कम नहीं। समाज की प्रक्रिया में दोनों भागीदार हैं। स्त्री शिक्षा एवं विकास के अभाव में सामाजिक पुनर्निर्माण असम्भव होगा। भारतीय आन्दोलन में गाँधी जी ने उनकी क्षमता एवं साहस की वरीयता दी। गाँधी के अनुसार यदि नारी समाज निम्न माना जाए, तो राष्ट्रीय प्रगति का अवरुद्ध होना स्वाभाविक है। स्त्री-पुरुष की परिपूरकता में गाँधी ने रचनात्मकता को आसीन पाया। गाँधी जी ने नारी की स्वतंत्रता एवं शिक्षा पर बल दिया और उन लोगों की कटु आलोचना की जो इस संदर्भ में उदासीन रहते हैं। अन्य सामाजिक कुरीतियों का दूर करने के अनवरत प्रयास के रूप में गाँधी जी ने बाल-विवाह का विरोध किया और विधवा पुनर्विवाह का समर्थन किया। गाँधी जी ने माना कि धर्म के नाम पर गोरक्षा के लिए आन्दोलन करना, परन्तु विधवाओं की दुर्दशा पर मूक रहना अधार्मिक, अनैतिक एवं अमानवीय है।¹¹

गाँधी जी पर्दा एवं दहेज जैसी कुप्रथाओं के विरुद्ध थे और इसे नैतिकता की रक्षा के पक्ष के विरुद्ध मानते थे, क्योंकि नैतिकता ऐसी निधि नहीं जिस दीवारों के भीतर बन्द रखा जा सके। इसलिए गाँधी के अनुसार पर्दा-प्रथा नारी के लिए अपमानजनक है। इसी प्रकार दहेज प्रथा के सम्बन्ध में गाँधी ने कहा कि विवाह वित्तीय अथवा साधनों की सौदेबाजी से अपवित्र

होते हैं। वास्तव में दहेज-प्रथा जाति-प्रथा सम्बद्ध हैं। जब तक विवाह के लिए चुनाव का क्षेत्र अमुक जाति के इने-गिने लड़कों या लड़कियों तक सीमित रहेगा, तब तक यह प्रथा भी बनी रहेगी। अतः इस बुराई का उन्मूलन करना ही होगा। इसका अर्थ है चरित्र की ऐसी शिक्षा जो देश के युवकों और युवतियों के मानस में आमूल-चूल परिवर्तन करे। गाँधी जी ने माना कोई भी ऐसा युवक जो दहेज को विवाह की शर्त बनाता है, वह अपनी शिक्षा को कलंकित करने के साथ-साथ अपने देश को भी कलंकित करता है। दहेज प्रथा के विरुद्ध शक्तिशाली लोकमत उत्पन्न करना चाहिए और जो युवक इस पाप में भागी होते हैं, उनका समाज से बहिष्कार किया जाना चाहिए।¹²

मादक साधनों का विरोध

गाँधी जी ने प्रत्येक प्रकार के मादक साधनों का विरोध किया, जैसे शराब, अफीम, तम्बाकू, सिगरेट आदि क्योंकि ये केवल व्यक्तिगत स्वास्थ्य के ही नहीं सामाजिक मर्यादाओं के विनाशकारी साधनों के रूप में अवतरित होते हैं। अनेक विकृतियाँ इन्हीं व्यसनों की देन हैं। गाँधी ने माना कि बीमारियों से तो केवल शरीर को ही हानि पहुँचती है, जबकि शराब आदि से शरीर और आत्मा दोनों का नाश हो जाता है।¹³

गाँधी जी ने सामाजिक परिवर्तन हेतु आर्थिक पुनर्निर्माण की जिन प्राथमिकताओं को इंगित किया वे भी उनके वैचारिक आग्रहों का प्रतीक थीं। पश्चिमी सभ्यता, औद्योगिकरण, मशीनीकरण तथा एकाधिकारी आर्थिक संयंत्र की विकृतियों से संशुद्ध, गाँधी के विकल्प स्वाभाविक रूप से विकेंद्रित एवं स्थानीय स्वायत्ता के मूल्यों से प्रेरित थे। व्यक्ति की महत्ता एवं गरिमा की प्राथमिकता के प्रहरी के रूप में वे मानते थे कि अर्थतंत्र के भौतिक, अमानुषिक तत्वों के निराकरण एवं उनके मानवीकरण में ही सहज सुलभ उपलब्धियाँ निहित हैं।¹⁴

व्यक्ति की महत्ता

गाँधी जी के अनुसार मानव जीवन का लक्ष्य समाज के पुनर्निर्माण की आधारभूत शर्त स्वयं मानव की पुनः रचना ही है। गाँधी जी के लिए मनुष्य केवल अस्थि-मांस का समवाय मात्र न होकर उससे कुछ अधिक और उसके परे भी कुछ है। उनके अनुसार इस समस्त दृश्य, अस्थायी, अचेत पदार्थ समूह के पीछे एक चैतन्य शक्ति है जो आत्मा है, जो अदृश्य, शाश्वत, सर्वव्यापी एवं स्वप्रबुद्ध है। यह ईश्वर का अंश है। दूसरे शब्दों में यह मनुष्य में निहित ईश्वरता है। उनका कहना है “ईश्वर और मनुष्य में तथा सृष्टि की निम्नतर योनियों में भी कोई अन्तर्विरोध नहीं है।”¹⁵

आत्मा की सत्ता में विश्वास

गाँधी दर्शन में आत्मा का अत्याधिक महत्व है। अपनी समस्त योजनाओं एवं कार्यक्रमों में गाँधी जी मनुष्य के केवल भौतिक व्यवहारों का ही विचार नहीं करते बल्कि उसकी वास्तविक प्रकृति का, उसके सच्चे स्वरूप का, उसके आध्यात्मिक तत्व का भी विचार करते हैं। आत्मा की सत्ता में विश्वास की आवश्यकता के सम्बन्ध में उनका मत सार्थक है। आत्मा शरीर के उपरान्त भी विद्यमान रहती है, इस ज्ञान के कारण सत्याग्रही इसी जीवन में सत्य की विजय देखने के लिए अधीर नहीं होता। अपने द्वारा सामाजिक रूप से अभिव्यक्त सत्य को विरोधी भी ग्रहण कर सकें, इसके प्रयास में मरण का भी वरण करने की क्षमता में ही वस्तुतः सत्याग्रही की विजय निहित है।¹⁶

पुनर्जन्म का सिद्धान्त

आत्मा में विश्वास करने पर अनिवार्यतः पुर्नजन्म के सिद्धान्त पर विश्वास करना पड़ता है। जिस प्रकार एक स्वर्णकार एक स्वर्णखण्ड लेकर उससे अन्य नवीनता एवं सुन्दरता रूप की सृष्टि करता है उसी प्रकार आत्मा इस शरीर का त्याग कर अन्य नवीनता एवं सुन्दरता रूप ग्रहण करती है। श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं—“जिस प्रकार कोई मनुष्य फटे-पुराने वस्त्रों को त्याग कर नवीन वस्त्र धारण करता है उसी प्रकार देही (आत्मा) जीर्ण शरीरों का त्याग कर नवीन शरीर ग्रहण करता है।” गीता की इस विचारधारा की भांति गाँधी जी भी पुर्नजन्म में विश्वास करते हैं। वे लिखते हैं - मैं पुर्नजन्म में उतना ही विश्वास करता हूँ जितना अपने वर्तमान शरीर की सत्ता पर। अतएवं मैं मानता हूँ कि स्वल्प प्रयास भी व्यर्थ नहीं जाता। इस विश्वास के कारण ही कल्पना करना कठिन नहीं है। इसी विश्वास के कारण यदि वे अपने स्वप्न को एक वर्ष के भीतर रूपायित नहीं कर पाते हैं तो वे कई शताब्दियों की अवधि में भी उसके लिए समान रूप से प्रस्तुत रहते हैं।¹⁷

समाज, धर्म एवं राजनीति का परस्पर सम्बन्ध

समाज, धर्म एवं राजनीति का परस्पर सम्बन्ध गाँधी जी अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए अतिशय लौकिक राजनीतिक एवं आर्थिक व्यापारों में भी लगे रहते थे। ऐसा क्यों? गाँधी जी का उत्तर है कि वे सत्य के अन्वेषी हैं और जो मनुष्य सत्य की सर्वव्यापी भावना की उपलब्धि का आकांक्षी है, वह अपने को जीवन के किसी भी क्षेत्र से अलग नहीं रख सकता। उनका कथन है, “इसी कारण सत्य के प्रति मेरी निष्ठा ने मुझे राजनीति के क्षेत्र में खींच लिया।” वस्तुतः वे राजनीति को अपरिहार्य दोष रूप में देखते थे। यदि मैं राजनीति में भाग लेता हूँ तो सिर्फ इसीलिए कि आज राजनीति ने हमें नागपाश की तरह जकड़ रखा है, जिससे कोई कितनी भी चेष्टा क्यों न करे छूट नहीं सकता। मैं इस नाग से जूझना चाहता हूँ साथ ही मैं राजनीति में धर्म का प्रवेश कराने की चेष्टा कर रहा हूँ।

इसके अतिरिक्त, चूंकि वे मानव जाति की परिपूर्ण एकता में विश्वास करते थे अतः वे मानव जाति से अपना पूर्ण तादात्म्य मानते थे। अतः उनके जीवन के उद्देश्य “आत्मोपलब्धि” की तब तक सिद्धि नहीं हो सकती जब तक “सर्वोदय” (सबका अधिकतम कल्याण) की स्थिति नहीं बन जाती और कथाकथित लौकिक व्यापार में भाग लिये बिना यह असंभव है। गाँधी जी की दृष्टि में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मनुष्य की विविध प्रचेष्टाएं एक-दूसरे से सर्वथा कटी हुई न होकर परस्पर सम्बद्ध हैं और वे मिलकर सहज, समन्वित, समग्र की रचना करती हैं। “यह मेरी सामाजिक गतिविधि का विस्तार मात्र है। तब तक मैं धार्मिक जीवन अतिवादित नहीं कर सकता जब तक कि मैं सम्पूर्ण मानव जाति के साथ तादात्म्य नहीं कर लेता और वह मैं तब तक नहीं कर सकता जब तक मैं राजनीति में भाग नहीं लेता। मानवीय प्रचेष्टाओं का सम्पूर्ण क्षेत्र आज एक अखण्ड समग्र की रचना करता है। आप सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं विशुद्ध धार्मिक कार्यों को सर्वथा पृथक खण्डों में विभक्त नहीं कर सकते। उनके अनुसार राजनीतिक दासता, आर्थिक शोषण एवं सामाजिक उत्पीड़न सर्वोदय की सिद्धि में बाधाएं हैं। अतएव आत्मोपलब्धि के इच्छुक का यह अनिवार्य कर्तव्य है कि ऐसी समाज व्यवस्था स्थापित करें जिसमें मनुष्य राजनीतिक स्वतंत्रता, आर्थिक मुक्ति एवं सामाजिक गौरव का उपभोग कर सकें।”¹⁸

मानव एवं समाज का पारस्परिक सम्बन्ध

मानव समाज का केन्द्र बिन्दु है। समाज, इसकी अन्य संस्थाएँ तथा इसके विकास और इसके स्वभाव के अनुरूप ही समझा जा सकता है। बिना मानव स्वभाव का विचार किए किसी भी सामाजिक सिद्धान्त की सफलता असंभव है। अतएवं समाज दर्शन के इतिहास में जितने भी समाज सम्बन्धी सिद्धान्त निरूपित हुए हैं, उसके पीछे उन विचारकों के मानव सम्बन्धी विचार ही आधार तत्व हैं। गाँधी जी के सामाजिक सिद्धान्तों का शुभारम्भ मानव चिन्तन से किया जा सकता है।¹⁹

मानव एकाकी जन्म लेता है किन्तु ऐसा लगता है कि समाज में रहना उसका स्वभाव है। इसीलिए समस्त समाज विज्ञानों के जनक अरस्तु ने उसे सामाजिक प्राणी कहा था। उसकी प्रगति या विकास का विहंगावलोकन करना भी उसे प्रमाणित करने के लिए यथेष्ट है कि मानव ने जो कुछ भी प्रगति की है। संक्षेप में कहें तो जिस किसी भी रूप में उसका विकास हुआ है, वह सब असंभव होता यदि उसने अपने को अपने जाति बान्धवों, कुल एवं जातियों या सामान्य रूप में समाज से विछिन्न कर लिया होता। केवल इतना ही नहीं मानव के रूप में जीना भी उसके लिए मुश्किल से संभव होता। वास्तव में व्यक्ति एवं समाज इतने अंतरावलम्बित एवं परस्पर पूरक बन गये हैं कि एक के बिना दूसरे की सत्ता, स्थिरता एवं प्रगति की कल्पना करना भी कठिन है। समाज के बिना मानव केवल अन्ध पशु है और मानव के बिना समाज विसंगत एवं अर्थहीन है। बहुत से व्यक्ति मिलकर एक समाज की रचना करते हैं। जो बदले में उसके अस्तित्व में उसके अस्तित्व को सुखमय एवं उनके जीवनादर्श की उपलब्धि को संभव बनाता है।²⁰

मानव अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर सके इसके लिए एक विशिष्ट प्रकार की समाज व्यवस्था आवश्यक है। वह ऐसी होनी चाहिए जो लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग की बाधाओं का निर्मूलन करे एवं व्यक्ति को अपने पथ पर अग्रसर होने की सुविधाएं प्रदान कर सके। गाँधी जी ने ऐसी समाज व्यवस्था को सर्वोदय समाज की संज्ञा दी।²¹ गाँधी व्यक्ति और समाज को श्रेष्ठता और हीनता के आधार पर नहीं समझते। व्यक्ति और समाज का स्वाभाविक अन्योन्याश्रम सम्बन्ध मानते हैं। ये व्यक्ति की स्वतंत्रता, गरिमा और कल्याण का महत्व सर्वोच्चता से स्वीकार करते हैं। गाँधी जी ने प्राचीन वर्ण व्यवस्था को स्वीकार कर प्रत्येक वर्ण के कार्यों को समान महत्व दिया। उनके अनुसार “सामाजिक अर्थशास्त्र में मालिक और मुनीम एक अविभाज्य प्राणी के ही अंग हैं, जहाँ न तो कोई हीन है और न कोई श्रेष्ठ।” इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र का विभाजन भी उनके अनुसार श्रम विभाजन के सिद्धान्त पर हुआ है परन्तु सभी के कार्यों का समान महत्व है।

गाँधी के अनुसार समाज व्यवस्था का चित्र अंकित करने के पूर्व उस विभिन्न सामाजिक आंदोलन एवं समस्याओं का ऐतिहासिक दृष्टि से सिंहावलोकन एवं समाजशास्त्रीय दृष्टि से विश्लेषण कर लेना लाभादायक होगा, जिन्होंने उस समाज व्यवस्था को जन्म दिया। चूंकि सामाजिक विकास का अतीत की परम्परा से अविच्छेद रूप से सम्बद्ध होता है, इसलिए यह आवश्यक है। अपनी शान्ति एवं समृद्धि, स्वतंत्रता एवं प्रगति के लिए भी नयी समस्त मानव प्रवेष्टाएं ऐतिहासिक परम्परा की कड़ियों के सदृश हैं। सभी पदार्थ एवं सभी विचार एक श्रृंखला की कड़ियाँ हैं। अतः इससे निष्कर्ष निकलता है कि कहीं भी चाहे प्रकृति के क्षेत्र में हो या मानव क्रियाकलाप के क्षेत्र में, वर्तमान को अतीत के सन्दर्भ के बिना नहीं समझा जा सकता।²² वस्तुतः सामाजिक सिद्धान्त प्राचीन प्रयोगों एवं विगत अनुभवों पर आधारित होते हैं। इन प्रयोगों एवं अनुभवों के तार्किक परिणाम के रूप में नवीन सामाजिक चेतना का जन्म तथा समाज व्यवस्था की आवश्यकता का बोध होता है।

गाँधी का विश्वास था कि यदि शोषण से मुक्त एक नवीन लोकतांत्रिक समाजवादी, समाज व्यवस्था को पक्की नींव पर प्रतिष्ठित करना है तो अर्थनीति में विकेन्द्रीकरण के साथ ही साथ राजनीति में भी विकेन्द्रीकरण होना ही चाहिए। केवल दोषपूर्ण आर्थिक संगठन द्वारा ही मनुष्यों का शोषण नहीं होता, बल्कि दोषपूर्ण राजनीतिक संगठन द्वारा भी होता है। केन्द्रकृत लोकतंत्र में अधिकारी की तांत्रिक एवं समग्रवादी बन जाने की प्रवृत्ति होती है। गाँधी जी ऐसे उपयुक्त क्षेत्रों के पक्ष में थे जो न केवल अपने आर्थिक बल्कि राजनीतिक जीवन की भी व्यवस्था स्वयं के पक्ष में थे जो न केवल अपने आर्थिक बल्कि राजनीतिक जीवन की भी व्यवस्था स्वयं कर लें। वे चाहते थे कि ऐसा प्रत्येक क्षेत्र एक छोटा सा गणराज्य हो। उनका विश्वास था कि लोकतंत्र (जिसमें अपने कार्य व्यापारों की व्यवस्था करने की वास्तविक स्वतंत्रता निहित है) केवल छोटी इकाइयों में ही

सफलतापूर्वक कार्य कर सकता है। ऐसी इकाईयाँ अपने कार्य व्यापार के सम्बन्ध में शासन के प्रकार्य स्वयं अपने प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण में कराये। राज्य ऐसे स्वतंत्र गणराज्यों का एक प्रकार का संघ होना चाहिए।²³

शिक्षा पद्धति एवं समाज व्यवस्था

शिक्षा पद्धति एवं समाज व्यवस्था का घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक विशिष्ट उद्देश्य को सामने रखकर ही वह व्यक्तियों के निर्माण में प्रवृत्त होती है। गाँधी जी ने भी एक शिक्षा पद्धति की रूपरेखा बनाई थी जो बुनियादी तालीम या वर्धा शिक्षा पद्धति के नाम से प्रसिद्ध है। अपने लेखों में गाँधी जी ने उनका विवेचन किया है। इसका लक्ष्य ऐसा समाज है जिसमें हर एक के लिए श्रम का विधान किया गया है। रूसो, पेस्टालोज्जी, हर्बर्ट फ्रायबल से आरम्भ कर शिक्षा सुधारकों एवं व्यावहारिक शिक्षकों के एक बड़े दल तथा जान ड्यूई एवं रूस के वर्तमान सुधारकों तक सब ने किसी न किसी रूप में इस विचार का समर्थन किया है कि विद्यालय में आभ्यासिक कार्य के द्वारा ही बालक शिक्षण एवं पुस्तकीय ज्ञान को उत्तम रूप से ग्रहण एवं धारण कर सकते हैं तथा उसी के द्वारा उनकी क्षमता का विकास किया जा सकता है।²⁴ यह एक विवादस्पद प्रश्न है कि समाज कहाँ तक बुनियादी तालीम को स्वीकार करे और सच कहा जाए तो हमारा इससे विशेष सम्बन्ध भी नहीं है।

अहिंसक क्रांति एवं समाज

गाँधी जी ने अहिंसा की केवल नई व्याख्या ही नहीं की, बल्कि अहिंसक समाज परिवर्तन का नवीन विचार भी रखा। इस तरह उन्होंने क्रांति की कल्पना में ही क्रांति उपस्थित की। क्रांति जो आज तक हिंसा और हत्या, क्रूरता और नृशंसता का पर्यायवाची समझी जाती रही है, उसे गाँधी जी ने क्रांति मानने से इंकार कर दिया। उनका कहना था कि क्रांति का अर्थ यदि मान्यता, आकांक्षा और जीवन के मूल्यों में आधारभूत परिवर्तन करना है, तो यहाँ बल प्रयोग का स्थान ही नहीं है। इसलिए जितना ही अधिक बल प्रयोग या जोर जर्बदस्ती होगी, उतनी ही अधिक विपरित प्रतिक्रिया होगी और फिर हमारी मान्यता परिवर्तित तो होगी ही नहीं। मान्यता विचार से बदलती है, बंदूक से नहीं। बंदूक से सिर को फाड़े भले ही सकते हैं, सिर को फेर नहीं सकते।

जो व्यक्ति अहिंसक होने का दावा करता है उससे यह अपेक्षित है कि वह अपने को क्षतिग्रस्त करने वाले पर क्रुद्ध न हो। वह उसका बुरा नहीं चाहेगा, वह उसका भी भला चाहेगा, वह उसे किसी प्रकार का शारीरिक आघात नहीं पहुँचाएगा। वह अनिष्टकर्ता द्वारा उसे पहुँचायी गई समस्त क्षति को सह लेगा। इस प्रकार समस्त जीवों के प्रति दुर्भावना का परिपूर्ण तिरोभाव ही अहिंसा है।²⁵ अपने सक्रिय रूप में अहिंसा सर्वजीवों के प्रति सद्भावना है। यह विशुद्ध प्रेम है। अहिंसा धर्म केवल ऋषियों एवं संतों के लिए ही नहीं है यह सर्व साधारण जनता के लिए भी है। अहिंसा मानव जाति का धर्म है जिस प्रकार हिंसा हिंसक पशुओं का धर्म है। यह आध्यात्मिक एकता के सिद्धान्त का विनियोग है। अहिंसा का मूलभूत सिद्धान्त इसी पर आधारित है कि जो एक के लिए श्रेयस्कर है वह समान भाव से सारे विश्व के लिए श्रेयस्कर है।²⁶

अहिंसा भीरुओं एवं कायरों का मार्ग नहीं है यह तो उन वीरों का मार्ग है जो मृत्यु का सामना करने के लिए भी प्रस्तुत हैं। जो हाथ में तलवार लिये मृत्युवरण करता है, वह निस्सन्देह वीर है किन्तु वह उससे भी बड़ा वीर है जो बिना अपनी कनिष्ठा तक उठाये और बिना विचलित हुए मृत्यु का सामना करता है। अहिंसा कायरता के लिए आवरण नहीं है, यह वीर का सर्वोत्कृष्ट गुण है। इसका अर्थ अत्याचारी के समक्ष दीन समर्पण नहीं है अतएव अहिंसा में आघात की क्षमता पूर्वानुमति है यह अपनी प्रतिशोध भावना पर जानबूझ कर नियंत्रण है। यदि कोई ऐसा नहीं कर सकता है तो उसे जैसे भी हो अवश्य प्रतिशोध ले लेना चाहिए। क्योंकि गाँधी जी के मतानुसार निष्क्रिय, स्त्रैण एवं निरुपाय समर्पण की तुलना में प्रतिशोध कहीं अच्छा है। कायरता एवं हिंसा में वे हिंसा को पसंद करते हैं।²⁷

गाँधी जी ने आदर्श समाज को एक विकेन्द्रित सामाजिक प्रणाली के रूप में व्यक्त किया है जिसमें सत्य, अहिंसा, सेवा-भावना, आत्म-निर्भरता और अपने हितों के अग्रसर करने की प्रवृत्ति समाज के सभी सदस्यों को अनुप्राणित करें। सामाजिक प्रणाली में अन्याय या शोषण के लिए कोई स्थान हो ही नहीं सकता। इस समाज की संरचना विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर आधारित होगी। अतः समाज में भौतिक और अधिक असमानताएं उत्पन्न नहीं हो सकेंगी। दूसरों के हितों के प्रति अपने स्वार्थ का बलिदान कर लोगों की तत्परता न्याय के आदर्श को समाज में स्वतः प्रतिष्ठित कर देगी।²⁸

इस प्रकार हम देखते हैं कि गाँधी जी की अहिंसा केवल तात्त्विक या किताबी वस्तु नहीं है। वह जीवन के प्रत्येक बिन्दू में समाई हुई है वह प्रत्येक समय क्षेत्र की वस्तु है। जीवन की कोई ऐसी समस्या नहीं, जिसमें इसका उपयोग न हो। इसीलिए वह केवल व्यक्तिगत व निजी आध्यात्मिक साधनों तक सीमित नहीं है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसका प्रयोग सम्भव है एवं उचित है। गाँधी जी का विश्वास था कि विश्व के लोगों की निस्वार्थ सेवा ही परमशेखर की श्रेष्ठ उपासना है इसलिए वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अहिंसा को संगठित करके अन्यायों का निराकरण एवं धर्म की प्रतिष्ठा करने को तत्पर थे।

सारांश

सामाजिक दृष्टि से गाँधी जी जाति, लिंग, वर्ण आदि के आधार पर किसी को बड़ा या छोटा मानने का तैयार नहीं थे। उनका आदर्श था 'सर्वोदय' अर्थात् समाज के सभी व्यक्तियों एवं वर्गों का सर्वांगीण विकास। गाँधी जी मानव जाति की परिपूर्ण एकता में विश्वास करते थे। अतः वे मानव जाति से अपना पूर्ण तादात्म्य मानते थे। अतः उनके जीवन के उद्देश्य "आत्मोपलब्धि" की तब तक सिद्धि नहीं हो सकती, जब तक "सर्वोदय" (सबका अधिकतम कल्याण) की स्थिति नहीं बन जाती और तथाकथित लौकिक व्यापार में भाग लिये बिना यह असंभव है। गाँधी जी की दृष्टि में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मनुष्य की विविध प्रचेष्टाएं एक-दूसरे से सर्वथा कटी हुई न होकर परस्पर सम्बद्ध हैं और वे मिलकर सहज, समन्वित, समग्र की रचना करती हैं। "यह मेरी सामाजिक गतिविधि का विस्तार मात्र है। मानवीय प्रचेष्टाओं का सम्पूर्ण क्षेत्र आज एक अखण्ड समग्र की रचना करता है। उसे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं विशुद्ध धार्मिक कार्यों को सर्वथा पृथक खण्डों में विभक्त नहीं किया जा सकता है। उनके अनुसार राजनीतिक दासता, आर्थिक शोषण एवं सामाजिक उत्पीड़न सर्वोदय की सिद्धि में बाधाएं हैं। अतएवं आत्मोपलब्धि के इच्छुक का यह अनिवार्य कर्तव्य है कि ऐसी समाज व्यवस्था स्थापित करें जिसमें मनुष्य राजनीतिक स्वतंत्रता, आर्थिक मुक्ति एवं सामाजिक गौरव का उपभोग कर सके। गाँधी जी ने तत्कालीन सामाजिक पुनर्निर्माण प्रक्रिया में अस्पृश्यता निवारण, साम्प्रदायिकता का विरोध अथवा साम्प्रदायिक सद्भावना की स्थापना, स्त्री-पुरुष की समानता पर बल, मादक साधनों का विरोध इत्यादि सामाजिक समस्याओं को महत्वपूर्ण लक्ष्य निर्धारित किया।

सन्दर्भ सूची

- 1 प्रिमिट सोसायटी, 1921, पृ. 196
- 2 महाभारत शान्ति पर्व।
- 3 बैन्जामिन किड, सोशल इवोल्यूशन, 1902, पृ. 84
- 4 गोपीनाथ धवन, सर्वोदय तत्व दर्शन, नवजीवन अहमदाबाद, 1963, पृ. 43
- 5 हरिजन, 30 अक्टूबर, 1937
- 6 आशा कौशिक, गाँधी नयी सदी के लिए प्रत्यय एवं परिवर्तन, जयपुर, पृ. 234

- 7 वर्मा वी.पी., द पोलिटिकल फिलोसोफी ऑफ महात्मा गाँधी एण्ड सर्वोदय, आगरा, 1965, पृ.सं. 61
- 8 राजेश कुमार शर्मा, सामाजिक एवं राजनैतिक परिवर्तन : अन्योयाश्रितता के आयाम, गाँधी नयी सदी के लिए, सम्पादक आशा कौशिक, पृ. 235
- 9 वर्मा वी.पी., पूर्वोक्त, पृ. 261
- 10 प्रभु आर.के., मेरे सपनों का भारत, नवजीवन, अहमदाबाद, 1960, पृ. 238
- 11 वहीं, पृ.सं. 240-41
- 12 यंग इंडिया, 3 मार्च, 1927
- 13 वर्मा वी.पी., पूर्वोक्त, पृ.सं. 232
- 14 राजेश कुमार शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 237
- 15 जुंग सी.जी., मॉडर्न मैन इन सर्वऑफ ए साले ई.टी., 1933, पृ. 230-31
- 16 एम.के. गाँधी, स्पीचिज एण्ड राइटिंग्स, मद्रास 1934, पृ. 504
- 17 यंग इंडिया, खण्ड-2, पृ. 1204
- 18 माई एक्सपेरिमेन्ट्स, खण्ड-2, पृ. 591
- 19 दत्ता डी.एम., दी फिलोसोफी ऑफ महात्मा गाँधी, पृ. 70
- 20 हाबहाउस एल.डी., साशेल इवालेयूशन एण्ड पॉलिटिकल थ्योरी, 1911, पृ. 30
- 21 हक्सले, अल्डुअल एण्ड्स मीन्स, लंदन, 1938, पृ. 1
- 22 कैम्ब्रिज, हिस्ट्री ऑफ इंडिया, प्रथम खण्ड, पृ. 63
- 23 प्रिन्सिपल ऑफ सर्वोदय, लैन प्लानिंग कमेटी, नई दिल्ली, 30 जून, 1950
- 24 हरिजन, 8 मई, 1937
- 25 यंग इंडिया, 19 मार्च, 1920
- 26 हरिजन, 12 नवम्बर, 1938, पृ. 329
- 27 यंग इंडिया, अगस्त 1920, पृ. 11
- 28 नव जीवन, 4 अप्रैल, 1925